देश में एक साथ चुनाव कराने का विचार तो अच्छा है पर अमल कैसे हो

भारत में क्या लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होने चाहिए। इस सवाल को अब फिर से हवा मिली है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक हालिया इंटरव्यू में इस बात को और भी साफ़ कर दिया है। प्रधानमंत्री ने कहा कि चुनावों को त्योहार खासकर होली की तरह होना चाहिए। यानी आप उस दिन किसी पर रंग या कीचड़ फेंके और अगली बार तक के लिए भूल जाएं। देश हमेशा इलेक्शन मोड में रहता है। एक चुनाव खत्म होता है तो दूसरा शुरू हो जाता है। मेरा विचार है कि देश में एक साथ यानी 5 साल में एक बार संसदीय, विधानसभा, सिविक और पंचायत चुनाव होने चाहिए। एक महीने में ही सारे चुनाव निपटा लिए जाएं। इससे पैसा, संसाधन, मैनपावर तो बचेगा ही, साथ ही सिक्युरिटी फोर्स, ब्यूरोक्रेसी और पॉलिटिकल मशीनरी को हर साल चुनाव के लिए 100-200 दिन के लिए इधर से उधर नहीं भेजना पड़ेगा। एकसाथ चुनाव करा लिए जाते हैं तो देश एक बड़े बोझ से मुक्त हो जाएगा। अगर हम ऐसा नहीं कर पाते तो ज्यादा से ज्यादा संसाधन और पैसा खर्च होता रहेगा। 2014 में लोकसभा चुनाव के बाद देश में उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात और हिमाचल प्रदेश में चुनाव हुए। 2018 में 8 राज्यों में विधानसभा चुनाव हैं जबकि 2019 में लोकसभा के चुनाव होने हैं। यह पूछे जाने पर कि क्या आप एक साथ चुनाव कराने का लक्ष्य हासिल कर लेंगे, प्रधानमंत्री ने कहा कि ये किसी एक पार्टी या एक व्यक्ति का एजेंडा नहीं है। देश के फायदे के लिए सबको मिलकर काम करना होगा। इसके लिए चर्चा होनी चाहिए।

इससे पहले नीति आयोग इस विषय को आगे बढ़ा चुका है। देश के मुख्य चुनाव आयुक्त पहले ही साफ़ कर चुके हैं कि चुनाव आयोग इसके लिए तैयार है बशर्ते राजनीतिक दलों में एकराय बन जाए। सवाल उठता है कि आखिर ये कॉन्सेप्ट कितना व्यावहारिक है। कहीं ये कोशिश संसदीय लोकतन्त्र के खिलाफ तो नहीं होगी। और क्या वाकई भारत की बहुदलीय प्रणाली में इस पर एक राय बन पाएगी। तर्क दिए जाते हैं कि ऐसा करने से चुनावों का खर्च आधा हो जाएगा। जो पहली नजर में ठीक लगता है मगर सवाल ये भी है कि अगर ऐसा किया गया तो इसके लिए संसाधन कहां से आएंगे। हालांकि देश में 1952 से 1967 तक एक साथ चुनाव हुए हैं लेकिन इसे इंदिरा गांधी सरकार ने भंग कर दिया। अब मोदी सरकार ने पहल की है कि फिर से राज्य और केंद्र के चुनाव 5 साल में एक बार, एक साथ कराएं जाए। तर्क है कि इससे देश का समय और पैसा बचेगा और सत्ता में राजनीतिक पार्टियां चुनावी मशीन की तरह काम नही करेंगी।

प्रधानमंत्री शुरू से ही कहते रहे हैं कि अलग-अलग चुनाव से विकास थम जाता है। साथ ही आचार संहिता लागू होने से विकास पर असर होने की उम्मीद है। अलग-अलग चुनाव से ब्यूरोक्रेसी पर असर पड़ेगा और बार-बार चुनाव से लोकलुभावन नीतियों का दबाव होगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की एक देश, एक चुनाव के विचार पर उसी समय से विपक्ष में दलीलें शुरु हुई हैं। विपक्ष का कहना है कि सभी चुनाव एक साथ कराना व्यावहारिक नहीं होगा। साथ ही एक साथ चुनाव के लिए सरकार के पास पर्याप्त मशीनरी नहीं है। विपक्ष ने यहां तक दलीलें दे दी हैं कि एक साथ चुनाव कराने में संवैधानिक दिक्कतों का भी सामना करना पड़ सकता है। संविधान में बड़े बदलाव करने होंगे। उत्तराखंड, अरुणाचल जैसे हालात होंगे तो क्या करेंगे। हालांकि स्टैंडिंग कमिटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ हों। लोकसभा, विधानसभा की 5 साल की तय अवधि हो। बीच में सदन भंग होने से सदस्य विकास कार्य नहीं कर पाते हैं। कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि एक साथ चुनाव से खर्च बचेगा और सामान्य जीवन में बाधाएं कम आएंगी। एक साथ चुनाव के लिए संविधान संशोधन करना पड़ेगा। जिसके चलते अनुच्छेद 83, 172, 85 और 174 में बदलाव करने होंगे। दूसरी तरफ एक देश, एक चुनाव पर कांग्रेस और सीपीआई ने प्रस्ताव की व्यावहारिकता पर सवाल उठाते हुए कहा है कि इससे भारतीय लोकतंत्र का संतुलन बिगड़ सकता है। टीएमसी ने प्रस्ताव पूरी तरह खारिज कर दिया है।

पिछले दिनों बीजेपी कार्यकारणी बैठक में एक देश, एक चुनाव पर सुझाव पेश किया गया था। पिछली बार भी बजट से पहले सर्वदलीय बैठक में भी प्रधानमंत्री ने इस पर सुझाव दिया था। 1967 तक लोकसभा, विधानसभा चुनाव साथ-साथ होते थे। कानून और कार्मिक मंत्रालय की स्टैंडिंग कमिटी ने सुझाव दिया था। जिस पर दिसंबर 2015 में रिपोर्ट संसद में पेश हुई थी। बीजेपी ने 2014 में अपने घोषणापत्र में एक साथ चुनाव का वादा किया। इससे पहले 2012 में लालकृष्ण आडवाणी ने एक साथ चुनाव का सुझाव दिया था। चुनाव आयोग के अनुमान के मुताबिक लोकसभा, विधानसभा चुनावों पर करीब 4,500 करोड़ रुपये खर्च किए जाते हैं। 2014 लोकसभा चुनाव में करीब 30,000 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान लगाया गया है।

प्रारम्भ से ही प्रधानमंत्री की पहल

16वीं लोकसभा के चुनाव में जीत दर्ज करने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने चुनावी प्रक्रिया के समेकन की बहस प्रारंभ की थी। इसी राह पर कदम बढ़ाते हुए अब सरकार ने लोकसभा तथा विधानसभाओं के चुनावों को एक साथ कराने की संभावनाओं को तलाशने का काम नीति आयोग को सौंपा है। चुनावी प्रक्रिया का समेकन एक गंभीर विषय है, जिसका संबंध समकालीन राजनीति से तो है ही, साथ ही देश की जीवंत संवैधानिक प्रक्रिया से भी है। क्या भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में एक साथ इतने बड़े पैमाने पर इन चुनावों को करवाया जा सकता है? इस राह में कैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है? विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं वाले देश में क्या यह योजना परवान चढ़ सकेगी?

देश में पहले भी लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ हुए हैं। पहली चार लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव 1952, 1957, 1962 और 1967 में एक साथ हुए थे। संविधान विशेषज्ञ सुभाष कश्यप के अनुसार 1967 के बाद स्थिति ऐसी आई। चौथे आम चुनाव (1967) के बाद राज्यों में कांग्रेस के विकल्प के रूप में बनी संविद (संयुक्त विधायक दल) सरकारें जल्दी-जल्दी गिरने लगीं और 1971 तक आते-आते राज्यों में मध्यावधि चुनाव होने लगे। 1969 में कांग्रेस का विभाजन हुआ और इंदिरा गांधी ने 1971 में लोकसभा भंग कर मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी, जबकि आम चुनाव एक वर्ष दूर था। इस प्रकार पहली बार लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होने का सिलसिला पूर्णत: भंग हो गया।

जनवरी 2017 में 'राष्ट्रीय मतदाता दिवस' पर पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने का समर्थन करते हुए चुनाव आयोग से कहा था कि सभी राजनीतिक दलों को एक मंच पर लाने की कोशिश करे, ताकि आम सहमति बनाई जा सके। बार-बार चुनाव कराने से सरकार का सामान्य कामकाज ठहर जाता है, क्योंकि चुनाव से पहले चुनावी आचार संहिता लागू हो जाती है। आज पूरे साल देश में कहीं-न-कहीं चुनाव होते रहते हैं और इसकी वजह से नियमित रूप से होने वाले काम ठप पड़ जाते हैं, क्योंकि वहाँ चुनाव की आचार संहिता लागू हो जाती है। इससे न केवल राज्य में काम रुकता है, बल्कि केंद्र सरकार का काम भी प्रभावित होता है।

देश के मुख्य चुनाव आयुक्त पहले ही साफ़ कर चुके हैं कि चुनाव आयोग इसके लिए तैयार है बशर्ते राजनीतिक दलों में एकराय बन जाए। सवाल उठता है कि आखिर ये कॉन्सेप्ट कितना व्यावहारिक है। कहीं ये कोशिश संसदीय लोकतन्त्र के खिलाफ तो नहीं होगी। और क्या वाकई भारत की बहुदलीय प्रणाली में इस पर एक राय बन पाएगी। तर्क दिए जाते हैं कि ऐसा करने से चुनावों का खर्च आधा हो जाएगा। जो पहली नजर में ठीक लगता है मगर सवाल ये भी है कि अगर ऐसा किया गया तो इसके लिए संसाधन कहां से आएंगे। हालांकि देश में 1952 से 1967 तक एक साथ चुनाव हुए हैं लेकिन इसे इंदिरा गांधी सरकार ने भंग कर दिया। अब मोदी सरकार ने पहल की है कि फिर से राज्य और केंद्र के चुनाव 5 साल में एक बार, एक साथ कराएं जाए। तर्क है कि इससे देश का समय और पैसा बचेगा और सत्ता में राजनीतिक पार्टियां चुनावी मशीन की तरह काम नही करेंगी।